ओ३म्

'हमारा स्वर्णिम अतीत और देश की अवनति के कारणों पर विचार'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

संसार में वैदिक धर्म व संस्कृति सबसे प्राचीन है। इसका आधार चार वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद हैं। **वेदों का लेखक कोई मनुष्य या ऋषि–मुनि नहीं अपितु परम्परा से इसे ईश्वर प्रदत्त बताया जाता है।** वैदिक

प्रमाणों एवं विचार करने पर ज्ञात होता है कि सृष्टि की रचना होने के बाद जैविक व प्राणी सृष्टि हुई जिसमें वनस्पति जगत के बाद प्राणी जगत के अन्तर्गत पशु, पक्षी तथा कीट पंतंग की अमैथुनी सृष्टि हुई। इनके बाद अन्तिम अमैथुनी सृष्टि मनुष्यों की हुई। मनुष्यों की अमैथुनी सृष्टि की न केवल सम्भावना है अपितु इसका उल्लेख वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। हम आजकल देखते हैं कि मनुष्येतर जीवयोनियों, पशु, पक्षियों, कीट व पतंगों आदि को अपना जीवन व्यतीत करने के लिए किसी भाषा व नैमित्तिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। उनका काम ईश्वर से उन्हें प्राप्त स्वाभाविक ज्ञान से चल जाता है। मनुष्य जब जन्म लेता है तो उसे माता के दुग्ध का पान करने व भूख व पीड़ा होने पर रोने के अतिरिक्त किसी प्रकार का कोई ज्ञान नहीं होता। इससे अधिक वह अपने हाथ पैरों को पटकता रहता है। माता उसे गोद में दुग्धपान कराने के साथ उसे पुचकारती व दुलारती है तथा भांति–भांति के गीत व लोरियां आदि सुनाती रहती है जिससे वह अपनी माता की आवाज व भाषा से कुछ कुछ परिचित होना आरम्भ करता है। कुछ महीनों में वह माता की आवाज को पूरी तरह से समझने लगता है और पिता की भी ध्वनि को अनुभव करने लगता है। धीरे–धीरे उसका ज्ञान बढ़ने लगता है। वह न केवल शब्दों को सुनकर पहचानने लगता है वरन उसे प्रेरित करने पर वह छोटे–छोटे शब्दों को बोलने भी लगता है। आयु वृद्धि के साथ वह अपनी माता व पिता से कुछ–कुछ नई बातें सीखता जाता है परन्तु परिवार व समाज के लोगों के साथ समान्य व विशेष रूप से ज्ञानपूर्वक व्यवहार करने के लिए उसे आचार्यों की आवश्यकता होती हैं जो उसे विद्यालय में प्राथमिक कक्षा से आरम्भ करके भिन्न–भिन्न विषयों का ज्ञान कराते हैं। विद्यालयों में भिन्न–भिन्न विषयों को पढ़कर वह नाना प्रकार के व्यवहार, कार्य व व्यवसाय करने में दक्ष हो जाता है।

सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में युवावस्था में उत्पन्न हमारे आदि पूर्वजों के पास अपनी कोई भाषा व ज्ञान तो होता नहीं है तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वह भाषा व व्यवहार करने का ज्ञान किससे प्राप्त करते हैं वा किससे सीखते हैं? इस प्रश्न का उत्तर वेदों को जानने वालों के लिए अधिक कठिन नहीं है। हम जानते हैं कि यह सृष्टि ज्ञान पूर्वक बनी हुई रचना है। यह स्वयं कदापि नहीं बन सकती। इसको बनाने वाली कोई पूर्ण बुद्धिमान सत्ता अर्थात् सर्वज्ञ, जो अतुल बलशाली अर्थात् सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वातिसूक्ष्म, अनादि, अनन्त, अजन्मा, अमर, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर आदि गुणों वाली होनी सिद्ध होती है। यदि वह न होती तो यह सृष्टि या ब्रह्माण्ड न बनता। उसका दिखाई देना इस लिए आवश्यक नहीं है क्योंकि उसका निराकार, सर्वव्यापक, सर्वातिसूक्ष्म व सर्वान्तर्यामी होना आवश्यक है और वह है भी ऐसी ही। उसे हम अपने ज्ञान के नेत्रों अर्थातः अन्तर्चक्षुओं से जान सकते हैं और आत्मा में विचार व चिन्तन से उसका प्रत्यक्ष अथवा साक्षात्कार कर सकते हैं जिस प्रकार से हम फूलों की सुगन्ध न देखकर भी उसका अनुभव करते हैं और इसी प्रकार वायु को आंखों से न दिखने पर भी अपनी त्वचा द्वारा स्पर्श कर उसका अनुभव करते हैं। इसी प्रकार हमें अपने मोबाइल की घण्टी बजने पर किसी परिचित की आवाज आती है तो उस व्यक्ति के सामने न होने पर भी हमें उसका प्रत्यक्ष व प्रामाणिक ज्ञान होता है कि हमारा अमुक परिचित मित्र, सम्बन्धी या परिवार का सदस्य बोल रहा है। अतः परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। उसी परमात्मा ने सभी मनुष्यों को आदि सृष्टि में बनाया था। उसी ने देखने के लिए आंखें, सुनने के लिए कान, स्वाद व शब्दोच्चार के लिए रसनेन्द्रिय अर्थात् जिह्वा व कण्ठ, स्पर्श के लिए त्वचा व सूंघने के लिए नाक व इसके साथ सत्यासत्य के विवेचन के लिए बुद्धि तथा शुभ व अशुभ संकल्पों के लिए मन आदि अवयव मनुष्य शरीर में बना कर लिए हैं। मनुष्य लाख कोशिश कर ले, वह भाषा को नहीं बना सकते। भाषा के न होने पर ज्ञान हो ही नहीं सकता चूंकि ज्ञान भाषा में ही निहित होता है। यदि भाषा न हो तो ज्ञान व समझ उत्पन्न नहीं हो सकती। जब मनुष्य इन्हें नहीं बना सकता है तो फिर प्रश्न यह है कि यह प्राप्त किससे होती हैं। इसका सीधा व सरल उत्तर है कि आदि भाषा वैदिक संस्कृत और ज्ञान 'वेद' यह इस संसार को बनाने वाली सत्ता ''ईश्वर'' से मनुष्यों को प्राप्त हुए हैं। इन प्रश्नों के इन उत्तरों के अतिरिक्त हम में से किसी के पास अन्य कोई विकल्प है ही नहीं। हां, अनावश्यक काल्पनिक तर्कों का सहारा लिया जा सकता है परन्तु सत्य यही है कि यह भाषा और ज्ञान हमें ईश्वर से प्राप्त हुआ हैं।

वेद संस्कृत भाषा में है जो लौकिक संस्कृत से भिन्न 'वैदिक संस्कृत' है। इन वेदों का यथार्थ अर्थ हमें महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का किया हुआ प्राप्त है। अंग्रेजी भाषा में भी डा. स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी का किया हुआ वेदों का भाष्य हमारे पास उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द के अनेक ग्रन्थ यथा सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कांर विधि, आर्याभिविनय, गोकरूणानिधि सहित अनेक लघु ग्रन्थ जिनका आधार वेद और वैदिक साहित्य है, हमारे पास उपलब्ध है। वेदों पर आधारित प्राचीन ग्रन्थ मनुस्मृति, 6 दर्शन तथा 11 उपनिषदें भी हमारे पास है जिनके प्रणेता ऋषि कोटि के असाधारण विद्वान मनुष्य हैं। इतिहास के दो प्रमुख ग्रन्थ बाल्मीकी रामायण तथा व्यास ऋषि कृत महाभारत भी उपलब्ध हैं। **इनका अध्ययन**

कर वैदिक धर्म, सभ्यता व संस्कृति से परिचित हुआ जा सकता है। आज भी वैदिक धर्म, संस्कृति व सभ्यता प्रासंगिक एव उपादेय है। हमने विगत 40 वर्षों में इन सभी ग्रन्थों का अध्ययन किया है और हमें लगता है कि इनके आधार पर स्वस्थ व सुखी जीवन व्यतीत किया जा सकता है। इनके अध्ययन के साथ हम आधुनिक ज्ञान व विज्ञान का अध्ययन कर विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिगं, शिक्षा, बैंकिगं, व्यापार, वाणिज्य आदि किसी भी क्षेत्र में अपना व्यवसाय चुन कर सफल जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

आज की सामाजिक व्यवस्था को भी जानने का प्रयास करते हैं। आज हमारे देश व संसार में अनेक मत–मतान्तर, धर्म, मजहब, सम्प्रदाय आदि हैं। यह सभी संसार के लोगों को अपने–अपने मत का अनुयायी बनाने का प्रयास करते हैं। ईश्वर के एक होने पर भी सबकी अपनी–अपनी भिन्न–भिन्न विचारधारायें, मान्यतायें, सिद्धान्त तथा उपासना पद्धतियां है। किसी को भी इस बात से कोई सरोकार नहीं दिखता कि उनके द्वारा की जाने वाली क्रियाओं व उपासना पद्धतियों से ईश्वर प्रसन्न होता है अथवा नहीं? ईश्वर क्या चाहता है किसी मत के द्वारा जानने का प्रयास नहीं किया जाता है। वैदिक मत व धर्म में यह प्रयास अवश्य किया गया है। उनके अनुसार ईश्वर सभी जीवों का सुख चाहता है इसी लिए उसने सृष्टि को बनाया आरै आरम्भ में ही संसार की सबसे मूल्यवान वस्तु वेदों का ज्ञान दिया जिसमें ईश्वर की ओर से मनुष्यों के कर्तव्यों का उल्लेख है। इन वैदिक कर्तव्यों की व्याख्यायें दर्शन, उपनिषद व मनुस्मृति ग्रन्थों में भी दी गई है। वेदों के ज्ञान का महत्व इस लिए सर्वाधिक है क्योंकि मनुष्य का आत्मा जन्म व मरण धर्मा है। इसका अर्थ है कि यह सृष्टि काल में जन्म–मृत्यु–जन्म के चक्र में बन्धा हुआ होता है, जन्म के बाद पूर्व जन्मों में किए हुए कर्मानुसार आयु, जाति व सुख व दुःखों को प्राप्त कर भोगता है और कुछ समय बाद मृत्यु को प्राप्त होता है। मृत्यु के बाद पुनः पूर्व व इस जन्म के शेष कर्मों के आधार पर नया जन्म मिलता है। यह जन्म किये हुए कर्मो के अनुसार होता है। यह सम्भव है कि हम अगले जन्म में मनुष्य बने और यह भी सम्भव है कि हम पशु, पक्षी, कीट व पतंग में से किसी योनि या जाति प्रजाति में पैदा हों। हमारा भावी जन्म मनुष्य योनि में अच्छे सुशिक्षित व सुखी परिवारों में हों जहां हम सत्कर्मों को करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त करें, इसके लिए ही वैदिक कर्तव्यों का पालन करने का विधान है।

सृष्टि के आदि काल में मनुष्यों की उत्पत्ति एवं वेदों के प्रादुर्भाव से ही काल गणना आरम्भ कर दी गई थी जो अद्यावधि जारी है। इस समय सृष्टि संवत् 1,96,08,53,115 चल रहा है। इस लम्बी अवधि में अब से लगभग 5,100 वर्ष पूर्व महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था। युद्ध में बहुत बड़ी संख्या में जनहानि हुई जिस कारण युद्ध के बाद सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई। विगत 5000 वर्ष में देश के ज्ञानी वर्ग के आलस्य, प्रमाद आदि अनेक कारणों से वेदों का ज्ञान लुप्त हुआ जिससे अन्धविश्वास, अवैदिक परम्परायें व कुरीतियां प्रचलित हो गईं। अज्ञान व कुछ अन्य कारणों से पूर्ण अहिंसात्मक यज्ञों में पशुओं की हत्यायें की जाने लगीं। स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन से वंचित कर दिया गया। देश भर में वेदों का अध्ययन समाप्त प्रायः हो गया। वेदों के अज्ञानतापूर्ण, मिथ्या व अश्लील अर्थ किये गये। सत्य वेदार्थ लुप्त प्रायः था जब कि वेदार्थ के कुछ ग्रन्थ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरूक्त व निघण्टु आदि ग्रन्थ कुछ लोगों के पास उपलब्ध थे परन्तु इनका उपयोग नहीं किया जा रहा था। देश व समाज का पतन इस सीमा तक हुआ कि महाभारत काल तक बोलचाल व साहित्य की भाषा सर्वत्र संस्कृत ही थी परन्तु इसके बाद संस्कृत का वर्चस्व समाप्त होकर अन्य अनेक भाषायें अस्तित्व में आ गईं। इन परिस्थितियों के उत्पन्न होने से नये–नये मत यथा बौद्ध, जैन, अद्वैत, द्वैत, शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अस्तित्व में आयें। विदेशों में भी पारसी या जरदुश्त मत, यहूदी मत, ईसाई मत तथा इस्लाम मत आदि अस्तित्व में आये। यह क्रम चलता रहा और भारत में मतों की संख्या में वृद्धि होती रही। इस कारण संसार में अज्ञान फैल गया और एक ईश्वर की नाना प्रकार से स्तुति व प्रार्थनायें की जाने लगी। **ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना के सत्य स्वरूप को जानने का प्रयास ही नहीं किया गया और न अब किया जा रहा है।** सब जगह **''अपनी अपनी ढफली, अपना अपना राग''** वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। अनेक मत–मतान्तर, मजहब, सम्प्रदाय व पन्थों के कारण समाज में समरसता समाप्त हो गई है। यदा–कदा यत्र–तत्र देश में साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। सब अपने–अपने मत को श्रेष्ठ व ज्येष्ठ मानने लगे और हमारे विदेशी मतों ने तो धर्मान्तरण का कुचक्र भी चलाया। ऐसी अनेक घटनायें इतिहास में अंकित है जहां शासक वर्ग व बलवान शत्रु का मत न मानने वालों की हत्यायें कर दी जाती थी और यह कार्य बहुत बड़े पैमाने पर भारत में हुआ। सभी मतों का आपस में संवाद समाप्त हो गया और सब अपने अपने घर में शेर बन गये। सन् **1825 में महर्षि दयानन्द का जन्म होता है।** वह वेदों का अध्ययन करते हैं और बहृमचर्य व योग के आधार पर अपूर्व पुरूषार्थ, तप एवं त्याग से वेदों के सत्य अर्थों को जानते हैं। **उन्होंने संसार के सभी मतों का अध्ययन किया और पाया कि सत्य धर्म केवल एक है और वह प्राचीन वेदों का धर्म है जिसे सनातन धर्म भी कहते हैं।** उनको इस तथ्य का भी साक्षात हुआ कि विश्व शान्ति के लिए आवश्यक है कि सभी मतों का परस्पर संवाद हो, वार्तालाप, उपदेश, गोष्ठी, शास्त्रार्थ कर सत्य मत का निर्णय किया जाये और उस सत्य मत को सभी स्वीकार करें। उन्होंने अनेक मतों के विद्वानों से संवाद और शास्त्रार्थ भी किए जिसमें वैदिक मान्यतायें हीं सत्य सिद्ध हुईं। बहुत से लोगों ने सत्य को स्वीकार भी किया परन्तु यह स्थिति नाममात्र की ही कही जा सकती है। **इस पृष्ठ भूमि में अब हम भारत के पतन के कारणों पर विचार करते हैं और उन्नति के कारकों का भी उल्लेख करते हैं।**

देश के पतन का पहला कारण तो वैदिक ज्ञान का लोप तथा असत्य व मिथ्या ज्ञान पर आधारित मतों का प्रादुर्भाव रहा जिस कारण देश में सर्वत्र अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियां उत्पन्न हो गईं। इसके फल स्वरूप मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित करना, अवतारवाद की कल्पना व उसका प्रचलन,

फलित ज्योतिष, जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था वा आधुनिक वर्णव्यवस्था, छुआ–छुत का प्रचलन, बाल विवाह–अनमेल विवाह व बहुविवाह, सती प्रथा, मदिरा पान, मांसाहार, अशिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान पर ध्यान न देना, निर्धनों व दुर्बलों का धनिकों व बलवानों द्वारा शोषण व उन पर अत्याचार आदि अनेक पतन के कारण समाज व देश में उपस्थित हुए। यह सब देश में चल पड़ा परन्तु ऐसा कोई व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ जो इनके विरूद्ध आवाज उठाता। इसका श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती को मिला जिन्हें उनके गुरू स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन कर देश व इसके पुराने सत्य वैदिक धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए प्रेरित किया था। स्वामी दयानन्द जी ने पतन को समाप्त करने और देश व विश्व का कल्याण करने के लिए 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की और इसके 10 स्वर्णिम नियम बनाये जिनमें से एक **''सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये''** है। दूसरा अति महत्वपूर्ण नियम यह है कि **''अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।''** उनकी इस प्रेरणा से उनके प्रमुख अनुयायियों स्वामी श्रद्धानन्द, पं. गुरूदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा हंसराज, पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु आदि ने गुरूकुलों व दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजों का देश भर में विस्तार किया। आर्य समाज के स्वर्णिम नियमों यह नियम भी हैं कि **''सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये। मनुष्य को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये अपितु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये। समाज का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति करना।''** यह नियम यद्यपि आर्य समाज के नियम हैं परन्तु इन नियमों का कोई भी विरोधी नहीं हो सकता। इसी प्रकार से ईश्वर के स्वरूप व उसके द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान से सम्बन्धित नियम भी देश व काल की सीमा से परे होने के साथ मानवमात्र के लिए हितकारी हैं व जीवन की उन्नति के आधार हैं। जहां यह नियम सरल व सुबोध हैं एवं देश व समाज के लिए लाभप्रद हैं वहीं देश के नाना प्रकार के मतों व अज्ञान तथा अन्धविश्वासों में ग्रसित होने के कारण इनका क्रियान्वयन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

समाज की उन्नत अवस्था वह अवस्था हो सकती हैं जहां किसी के साथ पक्षपात न होता हो और न ही अन्याय। सभी देशवासी शारीरिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ, सुखी, सम्पन्न व समृद्ध हों। इसके साथ सभी का धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से शिक्षित होना भी आवश्यक है। एक ही मत, एक जैसी परम्परायें और एक समान ही सबकी विचारधारा हो। यह उन्नति की स्थिति है और इसके विरीत जो स्थिति हो सकती है वह अवनति की स्थिति या अल्प उन्नति की स्थिति कही जा सकती है। समाज ऐसा हो जहां सभी लोग संसार की सबसे प्राचीन भाषा को बोलना व लिखना जानते हों। हिन्दी का ज्ञान भी सभी देशवासियों को होना चाहिये। इनका जो विरोध करे वह कड़े व तत्काल दण्ड से दण्डित किया जाये। इन दो भाषाओं के बाद क्षेत्रीय भाषा व अंग्रेजी का स्थान होना चाहिये। देश के लिए सर्वत्र एक समान, अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। वेदाध्ययन अनिवार्य होना चाहिये। वेदों की उपेक्षा सहन नहीं की जानी चाहिये। यहां यह कहना उचित होगा कि वेद किसी मत या पन्थ का ग्रन्थ नहीं अपितु साक्षात् ईश्वर से प्राप्त सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं जिन पर संसार के सभी मानवों का अधिकार है और सबका इसका अध्ययन व पालन करना परम कर्तव्य व मानव धर्म है। सभी अन्धविश्वास व कुरीतियों को सरकारी राजाज्ञा द्वारा निषिद्ध किया जाना चाहिये जिसे वेदों के विद्वान, सभी ज्ञानी, शिक्षाविद व वैज्ञानिक मिलकर तय करें। विरोध करने वालों को उचित दण्ड शीघ्रातिशीघ्र मिलना चाहिये। अज्ञान पर आधारित मतों पर प्रतिबन्ध होना चाहिये। देश में कम से कम सरकारी अवकाश हो। पुरूषार्थ की पूजा हो और पुरूषार्थहीन का असम्मान हो। गुणी लोगों को बिना किसी पक्षपात के रोजगार मिलना चाहिये और अयोग्य को समय–समय पर छानबीन कर उन्हें उनकी योग्यता व स्वभाव के अनुसार कार्य दिया जाना चाहिये। सामाजिक समरसता के लिए भी कानून हो। जो इसमें रूकावट करें वह कोई भी हों, दण्डित होने चाहियें। धन की भी एक सीमा होनी चाहिये। जो अधिक धनी हैं उनकी भी अधिकतम् सीमा होनी चाहिये। उससे अधिक धन सरकार उनके कर के रूप में लेकर उससे निर्धनों के कल्याण के कार्यक्रम चलाए जिससे सामाजिक व आर्थिक असमानता कम से कम हो। देश में एक ऐसा वातावरण बनना चाहिये जिसमें त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले अधिक सम्मानित माने जाने चाहिये और सभी को उनका यथोचित सम्मान करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो राष्ट्र उन्नत न होकर अवनति को प्राप्त होगा। अवनति के जहां अनेक कारण होते हैं वहां मांसाहार व मदिरापान भी आध्यात्मिक एवं भौतिक अवनति का कारण होता है। मदिरापान और मांसाहार सहित सभी प्रकार के नशों से मनुष्य का शरीर निर्बल होकर रोगग्रस्त हो जाता है। उसकी शारीरिक व बौद्धिक क्षमतायें स्वस्थ मनुष्य की अपेक्षा कम होती है। विलासी और व्यस्नी मनुष्यों से राष्ट्र को अधिक लाभ नहीं हो पाता जो व्यस्नों से रहित देशवासियों से होता है। अतः शासक व शासक वर्ग को इस दिशा में ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके साथ देश का सामरिक दृष्टि से भी पड़ोसी देशों से कहीं अधिक बलवान होना अति आवश्यक है। संसार का कोई देश अपनी सैन्य व अन्य किसी शक्ति के कारण हमें अपनी बात मानने के लिए विवश न कर सके, इस लिए हमें उनके समान व अधिक बल व सामर्थ्य देश में उत्पन्न करना आवश्यक है। गोहत्या किसी भी देश के लिए अभिशाप व कलंक होता है। गोहत्या एक प्रकार से राष्ट्र की हत्या के समान है। ईश्वर की दृष्टि में भी यह एक जघन्य अपराध है। एसे नागरिक कभी भी मन की प्रसन्नता, वास्तविक सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अवनति के इन कारणों को दूर करने पर ही देश उन्नति कर सकता है। आशा की जानी चाहिये कि भविष्य में यह स्वर्णिम समय अवश्य आयेगा।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चक्कूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः 09412985121